अध्यात्म प्राप्ति का सशक्त माध्यम – संगीत

डॉ० (श्रीमती) सुमन लता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग
आर०जी० (पी०जी०) कॉलेज, मेरठ
ईमेलः drsumanlatasharma3@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० (श्रीमती) सुमन लता शर्मा

''अध्यात्म प्राप्ति का सशक्त माध्यम – संगीत

Artistic Narration 2020,
Vol. XI, No. II,
Article No. 28 pp. 182-186

https://anubooks.com/artistic-narration-no-xi-no-2-july-dec-2020/

सारांश

भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों में अध्यात्म, धर्म व संगीत का भी समावेश है। अध्यात्म वस्तुतः भारतीय संस्कृति का जीवन है। भारतीय संस्कृति के अंग प्रत्यंग पर आधात्मिकता की अमिट छाप है।

संगीत आदि कलाओं का लक्ष्य स्थूल मनोरंजन तक सीमित नहीं है अपितु उसका उच्च ध्येय उस आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति है, जिसके कारण प्रत्येक कला भक्ति धर्म व उपासना प्रधान हो गई।

अध्यात्म भारतीय संस्कृति का अभिन्न तत्व है। भारतीय संस्कृति के अंग–प्रत्यंग पर आध्यात्मिकता की अमिट छाप है। संगीत आदि कलाओं का लक्ष्य उस आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति है जिसके कारण प्रत्येक कला–भक्ति, धर्म व उपासना प्रधान हो गई। प्रत्येक कला, साहित्य और धर्म का उद्देश्य आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति ही है।

'अध्यात्म' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'अध्य' + 'आत्म' जिसका तात्पर्य है, अपनी आत्मा का अपने अंतर का अध्ययन करना। 'स्व' या 'आत्म' का अध्ययन अध्यात्म है।

अखिल विश्व गायत्री परिवार की अध्यक्षा शैलबाला पण्डया ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित 'योगा कल्चर एण्ड स्प्रिच्युलिटी' के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने संदेश में अध्यात्म के बारे में कहा– ''अध्यात्म आत्मोत्कर्ष की दिशा में आगे बढ़ने और अंतःकरण को परिमार्जित कर अपने जीवन में दिव्य शक्तियों का उद्भव करने का सशक्त माध्यम है।''

वास्तव में अध्यात्म आत्मा के संबंध में खोज है। अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त स्वरूप के साथ तादात्म्य स्थापित कर उसमें व्याप्त शक्तियों का प्रकटीकरण करना तथा इसके साथ–साथ व्यावहारिक रूप में चेतना को परिष्कृत कर व्यवहारात्मक जीवन में परिष्कृति लाना अध्यात्म का मुख्य लक्ष्य है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य भी आत्मज्ञान की उपलब्धि ही है। उपनिषदों के अनुसार – आत्मा पंचकोशों से निर्मित है – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। इनमें अंतिमकोश आनन्दमय है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण भी है। इस आनन्दमय कोश द्वारा ही परमतत्व का साक्षात्कार संभव है।

आत्मा की भाँति ध्वनि अथवा नाद (जो कि संगीत का आधारतत्व है) सबसे (वाद्यों, देही से) अभिन्न है। चेतना सभी स्तरों पर है अतः नादस्वरूप चेतना भी सर्वत्र व्याप्त होती है। किसी पाश्चात्य विद्वान ने भी कहा है कि– संगीत केवल ध्वनिमात्र नहीं है अपितु वह सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के उद्घाटन का सबल साधन है। स्वरों में इतनी सामर्थ्य है कि कर्णेन्द्रियों में प्रवेश करते ही अन्तश्चेतना को अलौकिक आनन्द से परिपूरित कर देते हैं। श्रोता बाह्य जगत को भूल तन्मयता की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। इसे समाधि की स्थिति भी कहते हैं।

संगीत पारलौकिक स्तर तक मनुष्य की आत्मा को ले जाता है। इसी कारण उसका क्षेत्र भौतिक जगत से पर है। संगीत का मुख्य उद्देश्य अन्तरात्मा का उत्थान तथा उसको कलात्मक और आनन्दमय स्वरूप प्रदान करना ही होता है। यह मोक्ष प्राप्ति के लिये संजीवनी बूटी का कार्य करता है। इसमें वह रस है जो मनुष्य के बहिर्जगत से सम्बन्धित नहीं, वरन् हृदय की छिपी भावनाओं को प्रस्फुटित करता है।

संगीत का मूलाधार अध्यात्मिक मान्यताएँ है। संगीत केवल मनोविनोद का साधन न होकर परम मंगल का विधायक है। नारद, तुम्बरु से लेकर रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, बल्लभाचार्य, निम्बकाचार्य आदि दर्शनाचायों ने चौतन्य महाप्रभु, त्यागराज, हरिदास, संत ज्ञानेश्वर आदि भक्त गायकों ने तथा सूर, तुलसी मीरा, नन्ददास, विट्ठलदास आदि पद–रचियताओं ने संगीत व अध्यात्म का संबंध प्रगाढ़ किया। संगीत ही आराधना का माध्यम रहा इसीलिये देवालयों में पूजा–परिपाटी के अन्तर्गत गीत तथा नृत्य का प्रचलन प्राचीन काल से आज तक बराबर बना है। यह संबंध चाहे भक्तों के संकीर्तन रूप में हो या देवदासियों के रूप में अथवा मोक्ष प्राप्ति या आत्म–साक्षात्कार के साधन के रूप में।

इस देश की एकता का सबसे प्रमुख स्रोत है भक्ति। भक्ति देश की ही एकता नहीं विश्व की एकता को प्रेरणा देने वाली शक्ति के रूप में इस देश में प्रवाहमान रही है। 'नारद' ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है–

'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरुपा च'

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेममय तथा अमृतानन्दमय भाव है। भक्ति भावना में जहाँ एक और इष्टदेव की महत्ता में विश्वास होता है वहाँ दूसरी ओर संसार की क्षणभंगुरता अथवा व्यर्थता की भी प्रतीति रहती है। भगवान का करुणामय स्वरूप अभय प्रदान करता हुआ जीवन को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा संसार के दुःखमय रूप के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती है। कृष्ण–भक्ति में लीन होकर अनेक भक्त कवियों व संगीतज्ञों ने अपनी अनूठी रचनाओं से जनता को भाव विभोर कर दिया।

भक्ति के लिये कीर्तन सर्वोत्कृष्ट साधन है। कीर्तन करते समय महाप्रभु चौतन्य भक्ति में गद्‌गद होकर मूर्छित हो जाया करते थे। विश्व इतिहास साक्षी है कि प्राचीन युग में किसी भी देश का संगीत चाहे लौकिक रहा हो या आध्यात्मिक, भक्ति भावना से ओतप्रोत था। धर्म ही उसका एकमात्र प्रेरक था। जब कला का प्रयोजन आत्मानुभूति होता है तब आत्मारूपी दर्पण पर चढ़ी काम, क्रोध, माया तथा लोभ की धूल हट जाती है तथा स्फटिक की भाँति निर्मल–निर्विकार परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। जिस कला का प्रयोजन आत्मानुभूति होता है वह ओज प्रसाद तथा माधुर्य गुण की प्रबल प्रचुरता से दिव्य हो उठती है।

चौतन्य उच्च कोटि के भावुक भक्त थे। इन्होंने प्रभु प्राप्ति का सरलतम साधन भक्ति (कीर्तन) माना यद्यपि चैतन्य से पहले भी बंगाल में कीर्तन प्रचलित था किन्तु उसका प्रसार करने में श्री चैतन्य का महत्वपूर्ण स्थान है। वाद्य–यंत्रों के साथ सामूहिक रूप से भगवान के नाम का गुणगान करते हुए प्रेम विहवल हो जाने का नाम हरि–संकीर्तन है। इसे इस रूप में लाने का श्रेय महाप्रभु चैतन्य को है। कीर्तन अन्तःकरण की शुद्धि का सबसे उत्तम और सुगम उपाय है। इन्होंने अपने संकीर्तन में 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।' इस महामंत्र को सबसे अधिक लाभकारी और भगवद्‌प्रेम की वृद्धि करने वाला बताया है। 'गरुड़ पुराण' में गोविन्द कीर्तन को श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है–

''यदिच्छसि पर ज्ञानं ज्ञानाव्य परमं पदम।
तदा यत्नेन महता कुरु गोविंदकीर्तनम्।।''

अर्थात् आत्मज्ञान तथा आत्मज्ञान से परमपद पाने के लिये गोविन्द का कीर्तन करो।

अकबर के समय में भक्ति व संगीत का अदभुत सामंजस्य रहा। इन भक्तों को निजानुभूति से यह दर्शन प्राप्त हुआ कि इस संसार रूपी सागर से पार उतरने का एकमात्र अनिवार्य माध्यम 'तम्बूरा' है। प्रकाश से प्रकाश दिखाई देता है, रूप से ही परम रूप नजर आता है। तद्वत नादब्रह्म से ही परब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है इसलिये विश्व के सभी भक्त तम्बूरे की ही नाव में बैठते हैं। इन भक्त संगीतज्ञों में कृष्ण भक्त कवियों का विशेष स्थान है। अकबर के समकालीन कृष्ण भक्त कवियों में हरिदास, अष्टछाप के कवि व मीरा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी ने मानसिक उपासना व साधना से अपने उपास्य श्री श्याम कुंज बिहारी जी की नित्य निकुंज लीला का दिव्य दर्शन किया। स्वामी जी के कृष्ण न तो ब्रज में अवतार लेने वाले कृष्ण हैं और न ही वृषभानु – पुत्री राधा हैं। इनके कृष्ण तो अवतारों के भी अवतारी व नित्य बिहारी है। स्वामी जी का प्रेम 'तत्सुख – सुखित्व' से युक्त हैं। सामान्यतः व्यक्ति सभी कार्य अपने सुख व आनन्द के लिये करता है। किसी से प्रेम करता है तो अपने सुख के लिये परन्तु जिनसे प्रेम करें उसका सुख चाहे यही है सच्चे की प्रेम की कसौटी 'तत्सुख–सुखित्व की भावना'।

अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रथम सूरदास जी का नाम आता है। सूरदास जी का प्रत्येक पद मानवीय भावनाओं संवेदनाओं एवं सूक्ष्म अनुभूतियों के रम्य प्रकाश से मंडित है। समस्त कला–कौशल के अन्दर से झाँकती हुई भाव – रश्मियाँ उस सौन्दर्य के समान हैं, जिसकी नैसर्गित विभूति को अलंकरण प्रसाधन ने और भी निखार दिया है। प्राचीन काल से चली आ रही परम्परागत नख–शिख वर्णन प्रणाली सूर की भक्ति भावना से समन्वित होकर नवीन आकर्षण से युक्त हो गई है।

सूरदास जी ने संगीत कला को भक्ति के आध्यात्म पक्ष तक अनुभूत किया। वे अपने इष्टदेव को रिझाने के लिये उनकी लीलाओं को संगीतबद्ध करके गाते थे। सूरदास जी द्वारा रचित–

'छहौं राम छत्तीसों रागिनी, इक–इक नीके गावें री' यह पंक्ति उस समय मंदिर में गाई जाने वाली राग–रागिनी पद्धति का परिचय देती है।

अष्टछाप कीर्तनकारों (सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी) ने कृष्ण के जन्मोत्सव, बसन्तोत्सव, रासोत्सव, डोलोत्सव तथा होली से संबंधित पदों की रचना की। इनकी रचनायें अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। ये सभी श्रीनाथ जी के अंतरंग सखा थे तथा कवि होने के अतिरिक्त गान और वाद्य के मर्मज्ञ और अपूर्व ज्ञाता थे। ये कीर्तन में भिन्न–भिन्न राम–रागनियों के पद ताल–स्वर में गाते थे। संक्षेप में अष्टछाप के कवियों के पदों में अद्‌भुत संगीतात्मकता मिलती है।

प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो पुरुष गायकों के साथ–साथ नारियाँ भी संगीत में उतनी ही महान रही है। मीराबाई काव्य और संगीत कला दोनों में सिद्धहस्त थीं। मीरा के पदों में उनका कृष्ण के प्रति अनन्य आत्मसमर्पण ही बार–बार मुखरित हुआ है। अपने प्रभु गिरधर नागर के समक्ष उन्होंने पूर्णतया अपने आपको समर्पित कर दिया है। इनके गिरधर लाल के अतिरिक्त इस संसार में दूसरा कोई सगा–संबंधी नहीं है–

''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई''

मीरा नृत्य करते हुई कृष्ण की उपासना करती थीं। नृत्य और संगीत में प्रवीण होने के कारण ही मीरा ने इतने ललित और माधुर्यपूर्ण पदों की सर्जना की।

मीरा के पदों में सांस्कृतिक मूल्यों को अत्यन्त प्रांजल रुप में देखा जा सकात है। उनके पदों में होली महोत्सव का सुंदन वर्णन देखने को मिलता है। होली तो कृष्ण का प्यारा त्यौहार है। होली के दिन स्त्रियाँ गगरी सिर पर रखकर कुसंबी रंग से नये–नये वस्त्रों को धारण कर होली खेलती हैं, आनंदित होकर नृत्य करती हैं साथ ही चंग, मृदंग, डफ आदि वाद्य बजाये जाते हैं। मीरा के इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में की गई है–

''होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारी, रंग जुबति ब्रजनरी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल, चहुँ देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग, स्याम प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ, दै दै कल करतारी।

ये पंक्तियाँ तत्कालीन सांस्कृतिक मूल्यों को पूर्णतः स्पष्ट करती हैं। भक्ति साधना की तन्मयता में उत्तर भारत की साधिका मीरा ने अपने सर्वस्य को रंजित करते हुए लौकिक व्यापारों से मुक्त हो, कृष्ण के देवत्व में आत्मलीन और विलीन हो जाने का स्वरूप प्रगट किया है। इस भक्त कवियत्री के स्वरों में भक्ति का अजस्र प्रवाह है, मिलन की तीव्रतम आकांक्षा है, आत्मसत्य का आह्लाद है और चिरंतन सत्य में एकाकार होने की प्रबल लालसा सन्निविष्ट है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ऋषि–मुनियों, भक्त कवियों व कलाकारों सभी ने अपने आराध्यदेव की स्थिर व तल्लीन हो संगीत द्वारा आध्यात्मिक अलौकिक उपासना की हम अपने देश के आध्यात्मिक इतिहास में उस स्थान पर पहुँच गये हैं जहाँ से वर्तमान युग का प्रारम्भ होता है। हमारे सामूहिक जीवन की जाह्नवी में अनेकों दिशाओं से अनेक धारायें आकर मिल गई हैं। हमारी चेतना में आदिम मनुष्य की स्वच्छन्द आनन्द की भावना से लेकर युगों के इतिहास के अनन्तर–मुगलकालीन वैभव और विलास की भावना सभी विद्यमान हैं। वर्तमान युग की समष्टि चेतना के पीछे युगों का इतिहास है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. चक्रवर्ती, प्रो० इन्द्राणी. (1988). संगीत मंजूषा।
2. गर्ग, डा० लक्ष्मी नारायण. (1978). निबंध संगीत।
3. शर्मा, डा० पंकज माला. (1996). सामगानः उद्भव, व्यवहार एवं सिद्धान्त।
4. नागोरी, डा० एस० एल०. (1985). भारतीय संस्कृति।
5. शर्मा, डा० अमलदास. (1990). भक्ति संगीत।